Research Paper | E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 10 | ISSUE : 4 | APRIL 2024

"राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में डॉ भीमराव अंबेडकर के सामाजिक न्याय की अवधारणा : एक गंभीर चिंतन"

मोती लाल नारायण लाल [1]

[1] **सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान), चौधरी खरताराम राजकीय महाविद्यालय भणियाणा पोकरण.**

ABSTRACT:

समाज में रहने वाले सभी व्यक्ति समान हैं इसलिए व्यक्ति के परस्पर संबंधों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए, किसी भी व्यक्ति के साथ धर्म, जाति, लिंग, रंग, नस्ल, और भाषा इत्यादि के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए लेकिन मनुष्य की वर्चस्ववादी सोच की वजह से मनुष्य द्वारा मनुष्य के लिए हर प्रकार की विषमतावादी स्थिति उत्पन्न होती रहती है। अधिकतर देशों में आर्थिक विषमता की वजह से संघर्ष होते रहे हैं लेकिन भारत में आर्थिक विषमता के साथ-साथ सामाजिक विषमता के खिलाफ सदियों-सदियों से संघर्ष होता रहा है, भारत में शोषित वंचित समाज को सामाजिक न्याय पाने के लिए हमेशा संघर्ष करना पड़ा है। शोषित वंचित समाज को सामाजिक भेदभाव, आर्थिक भेदभाव, राजनीतिक भेदभाव, धार्मिक भेदभाव का सामना हमेशा करना पड़ा है। सामाजिक न्याय के लिए पूरी दुनिया में आवाज उठाने वाले बुद्ध. कबीर, रैदास, फुले, शाहू, अम्बेडकर, गाँधी, लोहिया, कन्फ्यूशियस, प्लेटो, सुकरात, इत्यादि महान विभूतियों ने बहुत लम्बा संघर्ष किया है।

भारत में जब राजतंत्र था और मनुस्मृति द्वारा राजकाज चलाया जाता था तो उस दौर में धर्म के आधार पर न्याय किया जाता था, मनुस्मृति काल में सामाजिक न्याय सबके लिए उपलब्ध नहीं था, अनेक प्रकार से अनार्यों का शोषण जात पात, भेदभाव, अस्पृश्यता के आधार पर होता था। लेकिन इस सामाजिक अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए समय-समय पर भारत में जन्में संतों गुरुओं महापुरुषों और वीर वीरांगनाओं ने बहुत लंबा संघर्ष किया है।

इस संघर्ष गाथा की महत्वपूर्ण कड़ी डॉ० आंबेडकर के अथक प्रयासों से 26 जनवरी 1950 को जब भारत में संविधान लागू हुआ तो सामाजिक न्याय पाने के लिए भारत के बहुजनों को एक लिखित दस्तावेज प्राप्त हुआ जिसे हम भारतीय संविधान कहते हैं जो कि शोषित वंचित समाज के लिए ही नहीं बल्कि पूरे भारतवासियों के लिए सुरक्षा कवच प्रदान करता है।

उनके अनुसार सामाजिक न्याय की अवधारणा का मुख्य अभिप्राय यह है कि नागरिक नागरिक के बीच सामाजिक स्थिति में कोई भेद न हो। सभी को विकास के लिए समान अवसर उपलब्ध हो, विकास के मौके अगड़े-पिछड़े को उनकी आबादी के मुताबिक मुहैयों हो ताकि समाजिक विकास का संतुलन बनाया जा सके। सामाजिक न्याय का लक्ष्य होना चाहिए कि समाज का कमजोर वर्ग जो अपना पालन करने के लिए भी योग्य ना हो, उनका विकास में भागीदारी सुरक्षित हो। जैसे अनाथ बच्चे, दलित, अल्पसंख्यक, गरीब लोग, महिलाएं अपने आप को असुरक्षित न महसूस करें।

KEYWORDS:

राजनीतिक परिप्रेक्ष्य, डॉ भीमराव अंबेडकर, सामाजिक न्याय, अवधारणा, भेदभाव, संकल्पना, आदर्श, ऊँच-नीच, नैतिक मूल्य।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
28th April 2024	30th April 2024

प्रस्तावना

न्याय की संकल्पना प्राचीन काल से ही राजनीति चिंतन का महत्वपूर्ण विषय रही है परंतु आधुनिक युग तक आते-आते इसमें मौलिक परिवर्तन हो गया है। परंपरागत दृष्टिकोण के अंतर्गत मुख्यतः 'न्यायपूर्ण व्यक्ति' (Just Man) के स्वरूप पर विचार किया जाता था। इसमें उन सद्गुणों (Virtues) की तलाश की जाती थी जो व्यक्ति को न्याय परायण बना देते हैं। यह दृष्टिकोण एक बनी बनाई व्यवस्था को बनाए रखने के लिए सर्वथा उपयुक्त था। सामाजिक न्याय की संकल्पना स्वतंत्रता (Liberty) समानता (Equality) और बंधुता (Fraternity) के आदर्शों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न है। आज के युग में न्याय की मुख्य समस्या यह है कि सामाजिक जीवन के अंतर्गत विभिन्न व्यक्तियों या समूहों के प्रति वस्तुओं (Goods), सेवाओं (Service), अवसरों (Opportunities), लाभों (Benefits), शक्ति (Power) और सम्मान (Honours) के साथ-साथ दायित्वों और बाध्यताओं (Obligations and Burdens) के आवंटन (Allocation) का उचित आधार क्या होना चाहिए?

न्याय की अवधारणा

न्याय (Justice) शब्द यूनानी भाषा के 'डिकैयोसुने' (Dikaiosune) शब्द का अनुवाद है। 'डिकैयोसुने' का क्षेत्र अंग्रेजी के न्याय शब्द से अधिक व्यापक है। फॉस्टर के शब्दों में, "हम न्याय तथा अन्याय शब्द को मुख्यतः न्यायिक या प्रशासनिक कार्यों के संपादन में दृष्टिगोचर होने वाले गुण के रूप में मानते है।" लेकिन यूनानी भाषा या यूनानी दार्शनिकों ने न्याय शब्द का प्रयोग अधिक व्यापक अर्थ में किया है। "प्लेटो के लिए न्याय शब्द का लगभग वही अर्थ है, जो हम नैतिकता शब्द से समझते हैं। यह वह आदत है, जो मनुष्य को अपनी इच्छा या तथाकथित हित के अनुसार कार्य करने से हम विश्वास के अनुशासन से रोकती है कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए।"

बरकर का कहना है, "प्लेटो का न्याय एक कानूनी विषय नहीं है, न यह कानूनी अधिकारों तथा कर्तव्यों की बाह्य योजना से संबद्ध है। यह कानूनीपन के क्षेत्र में नहीं आता, बल्कि इसका संबंध सामाजिक नैतिकता से है।

सामाजिक न्याय

सामाजिक न्याय 'बंधुता' (Fraternity) के आदर्श को साकार करना चाहता है। सामाजिक न्याय की मांग आधुनिक युग की विशेषता है। टॉम बॉटोमोर ने अपनी पुस्तक 'क्लासेज इन मॉडर्न सोसायटी (आधुनिक समाज में वर्गों की स्थिति) के अंतर्गत लिखा है कि, "सभ्यता के लंबे इतिहास में धन-संपदा, पद-प्रतिष्ठा और शक्ति की विषमताएं प्रायः ऐसी स्थिति के रूप में स्वीकार की जाती रहीं जिसमें कोई हेर-फेर न किया जा सकता हो। अठारहवीं शताब्दी में जब अमरीकी और फ्रांसीसी क्रांतियों ने इस स्थिति पर प्रश्न-चिह्न लगाने की प्रेरणा दी तब कहीं यह अनुभव किया गया कि सामाजिक वर्ग-व्यवस्था विषमता की जीती-जागती मिसाल है। ....सामाजिक न्याय की कामना से ही अधिकारों की

पुनर्व्यवस्था की मांग का जन्म हुआ"।

सामाजिक न्याय का मूल मंत्र यह है कि, संगठित सामाजिक जीवन से जो भी लाभ प्राप्त होते हैं, वे इने-गिने लोगों के हाथों में सिमटकर न रह जाएं, बल्कि सर्वसाधारण को विशेषतः श्रमजीवी वर्ग को उनमें समुचित वर्ग को उनमें समुचित हिस्सा मिले ताकि वह सामान्यतः सुखी, सम्मानित और निश्चित जीवन जी सके । श्रमजीवी वर्ग में दैहिक श्रम (Physical Labour) करने वाले लोग तो आएंगे ही, बौद्धिक श्रम (Intellectual Labour) करने वाले लोग भी इसी वर्ग में आएंगे। सामाजिक न्याय की मांग है कि आय और संपत्ति का सीधा संबंध श्रम और कर्तव्यपालन से होना चाहिए, विशेषाधिकार (Priviege), परंपरा (Convention) या उत्तराधिकार (Inheritance) से नहीं। संपत्ति का अधिकार वहीं तक मान्य होना चाहिए प्रथम, जब संपत्ति श्रम की आय में से बचत करके संचित की गई हो, और द्वितीय, संपत्ति व्यक्ति के समान्य सुख तथा उसकी कार्यकुशलता को बढ़ाने के लिए आवश्यक हो । जाहिर है, जब श्रम के साथ संपत्ति का सीधा संबंध स्थापित हो जाएगा तब घोर आर्थिक विषमताएं अपने आप कम हो जाएंगी या शायद लुप्त हो जाएंगी, क्योंकि व्यक्ति में श्रम की क्षमता तो आखिर सीमित होती है। इसका दूसरा परिणाम यह भी होगा कि जो व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार श्रम नहीं करता, उसे संपत्ति का अधिकार तो क्या, जीने का अधिकार भी नहीं होगा

राजनीतिक चिंतक और सामाजिक न्याय

महान राजनीतिक प्लेटो न्याय की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि, - "समाज में प्रत्येक व्यक्ति को वह उपलब्ध होना चाहिए जो उसको प्राप्य है। (Sabine) के शब्दों में, "व्यक्ति के लिए प्राप्य क्या है. इससे उसका अभिप्रायं यही है कि व्यक्ति को उसकी योग्यता, क्षमता एवं शिक्षा-दीक्षा के अनुरूप व्यवहार का पात्र समझा जाए । इसमें यह भावना भी अनतर्निहित है कि योग्यता के अनुसार व्यक्ति को जो भी कार्य सौंपे जाएँगे उन्हें वह पूरी ईमानदारी के साथ सम्पादित कर सकेगा ।" पाठक के लिए न्याय की यह परिभाषा विचित्र है ।

प्लेटों की न्याय संकल्पना के अनुसार उसके विचार से न्याय का अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि सार्वजनिक शान्ति और व्यवस्था को बनाए रखने मात्र से 'समुचित' या नहीं स्थिति की प्राप्ति ही सामाजिक न्याय है । समाज की बाह्य व्यवस्था तो उस समरसता का जिससे राज्य निर्मित होता है, एक बहुत छोटा सा अंश मात्र है । राज्य नागरिकों के लिए केवल स्वतंत्रता और जीवन-रक्षा की व्यवस्था मात्र ही नहीं करता वरन् उन्हें सामाजिक अन्तर्सम्बन्धों के विकास के वे सभी प्रकार प्रदान करता है जो सभ्य जीवन की आवश्यकताओं और सुविधाओं की उपलब्धि के लिए पूर्व स्थितियाँ हैं ।

लॉक के स्वयं के शब्दों में, "प्राकृतिक कानून की बाध्याताएँ समाज में समाप्त नहीं होती । इस दोहरे नियंत्रण को इस तरह भी प्रकट किया जा सकता है कि राज्य 'व्यक्तियों के मन स्वतन्त्रता एवं सम्पत्ति के प्राकृतिक अधिकारों का सम्मान करता है और साथ ही प्राकृतिक कानून का स्वयं भी पालन करता है । "सारांश यह है कि लॉक के समझौते से उत्पन्न समाज हॉब्स के समान असीम और अमर्यादित अधिकार नहीं रखता। यह समाज लोगों के अन्य अधिकारों एवं प्राकृतिक कानून का अतिक्रमण करने पर कर्तव्यच्युत होता है और तब जनता उसके विरूद्ध विद्रोह की अधिकारिणी है। "लॉक का न्याय दासता का पट्टा नहीं स्वतंत्रता का पत्र है ।"

अरस्तू के न्याय दृष्टि के अनुसार, धन, स्वतन्त्रता एवं समानता आदि को आधार न मानकर सद्गुण (virtue) को आधार मानना चाहिए । उसकी मान्यता है कि हम एक गुणशाली व्यक्ति से हर प्रकार के गुण प्राप्त कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त हमें यह भी देखना चाहिए कि व्यक्ति ने समाज के लिए क्या किया है । इस सिद्धांत के द्वारा सद्गुणी व्यक्ति को सरलता से खोजा जा सकता है जिसमें नैतिक, बौद्धिक एवं सैनिक आदि सभी तत्व मिल जाऐंगे ।

इस प्रकार शक्ति वहीं होती हैं जहाँ एकता है एवं एकता तभी संभव है जब एक साथ कार्य करने वाले व्यक्ति कुछ सर्वमान्य सिद्धांतों में विश्वास करते हैं । जहाँ सिद्धांतों के प्रति मतैक्य नहीं होता, वहाँ लोग साथ मिलकर कार्य नहीं कर सकते, वहाँ एकता नहीं हो सकती, वहाँ शक्ति नहीं रहती, वहाँ तो विग्रह और विघटन का तांडव नर्तन होता रहता है । सिद्धांतों के प्रति आस्था वहीं संभव है, जहाँ सामाजिक न्याय है ।

डॉ भीमराव अंबेडकर के सामाजिक न्याय की अवधारणा

अंबेडकर ने कल्पना की थी कि भारत का लोकतांत्रिक समाज केवल तभी फले-फूलेगा जब अछूत मूलभूत मानवाधिकारों का लाभ लेंगे । यह एक विडंबना थी कि हिन्दु समाज में अछूतों के साथ नागरिकों जैसा बर्ताव नहीं किया जाता था और उन्हें सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा जाता था ।

अंबेडकर ने मूलभूत मानव आवश्यकताओं के सिद्धांत की सहायता ली जिसके अनुसार दलितों की मूलभूत मानव आवश्यकताएं मात्र भौतिक (धन, संपत्ति, व्यावसायिक, गतिशीलता) नहीं थीं अपितु अभौतिक भी थीं । उन्होंने अर्थपूर्ण ढंग से व्यक्तिगत अधिकारों पर समुदाय के दावों की आवश्यक प्राथमिकता के मामले में वकालत की ।

उनके भेदभाव विरोधी सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों को निजी पेशों और कानूनी प्रक्रियाओं द्वारा कलंकित होने से बचाना था । दलितों के खिलाफ उत्पीड़न के संरचनात्मक रूपों ने अच्छी तरह अतिक्रमण कर रखा था जिन्हें देखते हुए इसे महत्वपूर्ण माना गया । इस सामाजिक बीमारी का उपाय करने के लिए अंबेडकर आखक्षणों के जरिए दलितों की राजनीतिक हिस्सेदारी की संभावनाएं उठाते हैं ।

दूसरा उद्देश्य दलितों द्वारा झेले गए ऐतिहासिक अन्याय से संबंधित था।उनकी सामाजिक न्याय की दृष्टि में अछूतों को शिक्षा प्रदान करने और भारतीय रिपब्लिकन पार्टी के लिए अछूतों के विद्यालयों और कलेजों के लिए अधिशेष और बंजर भूमि का पुनः वितरण भी शामिल था ।

सामाजिक रूप से पिछड़े हुए और शोषित लोगों के महानतम शुभचिंतक अबेडकर की सामाजिक और संवैधानिक दृष्टि ने उन्हें निराशा और उदासी का मार्ग नहीं, बल्कि राष्ट्रीय मामलों में खुद को अधिकारपूर्वक जताने के अद्भुत अवसर का मार्ग दिया ।

अंबेडकर की सामाजिक और कानूनी दृष्टि का केन्द्रीय विषय है अनुभवजन्य मनुष्य और मानव व इस जीवन में में मानव के बीच सही संबंधों की स्थापना। न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे पर आधारित संबंधों से नैतिक समझ और आपसी सम्मान का लोकतांत्रिक और मानवतावादी समाज उभरेगा। अंबेडकर को पूर्णतया विश्वास कि राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा के साथ विहीनों को जोड़ने के लिए शिक्षा सर्वोत्तम संसाधनों में से एक है । इस प्रकार से उन्होंने शिक्षा के विस्तार और प्रोत्साहन पर अत्यन्त जोर दिया । भारत के संविधान में प्राथमिक शिक्षा की निःशुल्क और अनिवार्य प्रणाली की शुरूआत इस उद्देय का सुखद परिणाम है ।

अंबेडकर के विचार में सामाजिक न्याय की राह का नेतृत्व शिक्षा द्वारा किया जाना था । उन्हें दृढ़ विश्वास था कि, "सामाजिक बुराईयों और अन्याय विरूद्ध शिक्षा की प्रभावकारिता रामबाण है क्योंकि भारत में सामाजिक अन्याय की समस्या न केवल आर्थिक है, बल्कि सांस्कृतिक भी है"।

सामाजिक समानता स्थापित करने के लिए सामाजिक न्याय एक स्पष्ट अनिवार्यता है जिसे केवल हमारे समाज के शोषित और वंचित वर्गों की गरीबों से भी गरीब जनता के सामान्य विकास और सशक्तिकरण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । इसके लिए, जैसा कि अंबेडकर ने जोर दिया था, नौकरियां और शिक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण है । लेकिन न्यायाधीश कृष्णा अय्यर का मत है कि, "यदि भूमिहीन दलितों को जमीन नहीं दी गई, कंगाल अछूतों को छोटे पैमाने पर कारखाने शुरू करने का अवसर नहीं दिया गया, अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाने में सक्षम बनाने के लिए एक बंधुआ महिला को दासता से मुक्त नहीं किया गया, और प्रायः अनपढ़ व अव्यवस्थित तथा अपराधी व बेसहारा परिस्थितियों में घसीटे जाने वलो दलित युवाओ को भारी संख्या में पेशेवर पदों और सार्वजनिक सेवाओं में प्रवेश करने के कारगर अवसर नहीं दिए गए तो सामाजिक न्याय के दो स्तंभ-समानता और समरूपता दूर की कौड़ी रह जाएंगे ।"

पीड़ित लोगो को बंधन से मुक्त कराने के क्रम में अंबेडकर को अत्याचार, अन्याय और गलत परंपराओं के खिलाफ लड़ाई करनी पड़ी थी । गरीबी उनके राजनीतिक आदर्शों की सबसे बड़ी शत्रु थी उन्होनें अन्याय, सामाजिक दासता, असमानता तथा गरीबी के खिलाफ और दलितों के बीच से उन्हें हटाने के लिए जोर लगाकर संघर्ष किया । वे प्रेम और नफरत दोनों का संयोजन दर्शात हैं- ज्ञान से प्यार और अज्ञानता व गरीबी से नफरत वे हर उस चीज की निंदा करते हैं जो गरीबी को बढ़ावा देती है । समाजवाद का उनका विचार भी गरीबी पर एक हमला है । वे उन व्यक्तियों से सहमत नहीं होते हैं जिन्होंने उदासनी धैर्य और गरीबी के प्रति संतोष विकसित कर लिया हो ।

इस प्रकार सामाजिक न्याय के प्रति उनका नजरिया मानवतावादी होने के साथ साथ राष्ट्रवादी भी था उनका दृष्टिकोण दोहरा था वे न केवल विदेशी शासन से आजादी चाहते थे, अपितु उन लोगों के लिए आंतरिक आजादी भी जिन्हें इससे वंचित रखा गया था । वे कहते हैं, हमारे पास ऐसी सरकार होनी चाहिए जिसमें सत्ता में ऐसे आदमी हों जो यह जानते हुए कि कहां आज्ञाकारिता का अंत होगा और विरोध शुरू हो जाएगा, जीवन की सामाजिक और

आर्थिक नियमावली में संशोधन करने से घबराएं नहीं, जिसकी न्याय और उपयोगिता के आदेश अविलंब मांग करते हैं। ब्रिटिश सरकार कभी भी यह भूमिका नहीं निभा पाएगी। एक ऐसी सरकार जो लोगों की हो, लोगों के लिए हो और लोगों के द्वारा हो, केवल वही इसे संभव बनाएगी।"

निष्कर्ष

अन्ततः कह सकते हैं कि सामाजिक न्याय को स्थापित करने के लिए भारत सरकार को सख्त कदम उठाना पड़ेगा, भारत के समस्त संसाधनों का सामाजीकरण करना होगा, समस्त साधनों सुविधाओं और आय के स्रोतों का समान वितरण करना होगा, सबके लिए न्याय एक समान करना होगा, सबके लिए शिक्षा व्यवस्था और स्वास्थ्य व्यवस्था एक समान करना होगा, समानुपातिक न्याय के सिद्धांत का पालन करना होगा, विशेष जरूरतमंद के लिए विशेष ख्याल रखना होगा, दलितों पिछड़ों आदिवासियों और विकलांगों के हितों के लिए विशेष अभियान चलाना होगा। सामाजिक न्याय का अनुपालन न करने वालों के लिए कठोर दण्ड का प्राविधान करना होगा। ऊँच-नीच, जाति-पांति, छुआछूत, भेदभाव, अंधविश्वास का समर्थन करने वाले लोगों के लिए कठोर सजा की व्यवस्था करनी होगी।

REFERENCES

1. पुनियान, राम 'सामाजिक न्याय एक सचित्र परिचय', वाणी प्रकाशन, प्रयागराज, 2010.

2. अम्बेडकर, डॉ० बी०आर० 'जात-पांत का विनाश', बुद्धंम पब्लिकेशन, जयपुर, 2017.

3. अग्रवाल, डॉ० प्रदीप, 'महान समाजशास्त्री बाबा साहेब डॉ० आंबेडकर', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018.

4. नारायण, डॉ० दीप 'सामाजिक न्याय एवं वैश्वीकरण', राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2018.

5. अम्बेडकर, डॉ० बी०आर० 'भारत का संविधान', बुद्धम पब्लिकेशन, जयपुर, 2019.

6. अम्बेडकर, डॉ० बी०आर०, 'संघ बनाम स्वतन्त्रता', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्दिल्ली-2019.

7. पाठक, डॉ० शोभनाथ 'डॉ० बी०आर० अम्बेडकर सामाजिक न्याय', रिलायंश पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, 2019.

8. प्रभाकर, इंजीनियर डी०के० 'सामाजिक न्याय का प्रथम सोपान आरक्षण' नोशन प्रेस, मुम्बई, 2020.

9. दृष्टि, The Vision 'भारतीय समाज एवं सामाजिक न्याय', VDK Publications Pvt. LTD, New Delhi, 2022.

10. कुमार, डॉ० नीशू, 'आचार्य विनोबा भावे के दर्शन की आधुनिक भारतीय समाज में प्रासंगिकता', नालंदा प्रकाशन-2022, नई दिल्ली।